Gyanvividha, Vol.-3; Issue-1 (Jan.-March) 2026 : PP-420-425

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-4.5
Vol.-3; Issue-1 (Jan.-March) 2026
Page No.- 420-425
©2026 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com
Author's :

1. जिम्मी सौरभ

एम.ए., नेट. शोधार्थी, हिंदी विभाग, बी. आर. अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर.

2. प्रो. सतीश कुमार राय

विभागीय अध्यक्ष, हिंदी विभाग, बी. आर. अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर.

Corresponding Author :

जिम्मी सौरभ

एम.ए., नेट. शोधार्थी, हिंदी विभाग, बी. आर. अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर.

'कसौटी' पत्रिका : उद्देश्य एवं उपलब्धियाँ

'कसौटी' (अप्रैल-जून, 1999–अक्टूबर-दिसंबर, 2002) प्रसिद्ध आलोचक नन्दकिशोर नवल (2 सितम्बर, 1937–12 मई, 2020) द्वारा प्रकाशित-संपादित हिंदी की श्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिका है। आलोचना केन्द्रित इस त्रैमासिक पत्रिका के मात्र पन्द्रह अंक ही प्रकाशित हो सके, किन्तु उन अंकों ने साहित्यिक पत्रकारिता को विशिष्ट गरिमा दी। उसे अधिक संवादपरक और सम्प्रेष्य बनाया। इस पत्रिका ने गंभीर पाठकों को उद्वेलित किया, आलोचकों को एक लोकतांत्रिक मंच दिया और नये-पुराने कवियों को साथ-साथ प्रस्तुत कर परम्परा और सामयिकता का बोध कराया।

'कसौटी' के पूर्व नवल जी के पास संपादन का लम्बा अनुभव था। 1966 में उन्होंने 'ध्वजभंग' पत्रिका का, 1970 में 'सिर्फ' पत्रिका का और 1977 में 'धरातल' पत्रिका का संपादन किया था। रचनावलियों, संचयनों और पाठ-ग्रंथों के संपादन का गहरा अनुभव भी उनके पास था। पाँच वर्षों (1980-1985) तक वे 'आलोचना' पत्रिका के संपादन में भी नामवर सिंह के साथ जुड़े रहे।

इस प्रकार लम्बा अनुभव लेकर उन्होंने 'कसौटी' पत्रिका की शुरुआत की। इस पत्रिका का प्रकाशन सोद्देश्य हुआ था। प्रवेशांक में ही उन्होंने स्पष्ट किया– "हिन्दी का क्षेत्र बहुत विस्तृत है, लेकिन अभी उसमें आलोचना की एक भी उल्लेखनीय पत्रिका प्रकाशित नहीं हो रही है। एकाध जो ऐसी पत्रिकाएँ हैं, वे साहित्य में आलोचना की भूमिका के निर्वाह की दृष्टि से अपर्याप्त हैं। आज रचनाशीलता की पहचान का लगभग विघटन हो चुका है और साहित्य पर व्यक्तिगत सम्बन्धों से लेकर व्यावसायिकता और समाचार-माध्यमों तक का दबाव लगातार बढ़ता जा रहा है। एक हद तक यह हुआ है कि साहित्यालोचन का रचना से पूरा सम्बन्ध-विच्छेद हो गया है जिससे वह शून्य में तैर रहा है या अपने ही वाग्जाल में घिरा रहा है। जहाँ तक साहित्य-चिन्तन का प्रश्न है, वह पाश्चात्य दर्शन और विचार से नये सिरे से आक्रान्त है और हमारे पाँव एक

बार फिर उखड़ते जा रहे हैं। यह देखकर लगता है कि भूमण्डलीकरण के इस दौर में हम अपनी साहित्यिक वैचारिक अस्मिता को विकसित करने के क्रम में पूरी तरह से गँवा देंगे। बात उत्तर-औपनिवेशिकता की की जाती है, लेकिन असलियत यह है कि हम नव-उपनिवेशवाद के शिकार होते जा रहे हैं। समकालीन हिन्दी साहित्य का यही परिदृश्य है, जिसमें हमने 'कसौटी' के प्रकाशन की योजना बनाई है। साहित्य-विवेक की रक्षा और उसके संवर्धन तक जो गलत हो रहा है, उसके प्रतिरोध के लिए आलोचना की एक सही पत्रिका की आवश्यकता को और अधिक टालना हमारे लिए एक अपराध की तरह होता।"[1]

अपने उद्देश्य को और स्पष्ट करते हुए उन्होंने आगे लिखा है— "फिलहाल हमने 'कसौटी' के पन्द्रह अंक निकालने का निश्चय किया है। हम यह दावा नहीं करते कि इतने ही अंकों से हम साहित्य के परिदृश्य को बदल देंगे, क्योंकि हम हिन्दी-साहित्य की व्यापकता से परिचित हैं, लेकिन ये अंक उस दिशा में एक सार्थक हस्तक्षेप होंगे, इसका हमें विश्वास है। हम पुनः यह बात दुहरा रहे हैं कि हमारा उद्देश्य धुंध को छाँटना होगा, न कि खुद नई धुंध खड़ी करना या जो पहले से फैली हुई है, उसे और घना करना।"[2]

प्रवेशांक से ही यह पत्रिका उद्देश्य-पूर्ति के लिए सजग रही है। पहले अंक में एक अत्यन्त प्रासंगिक परिचर्चा प्रकाशित की गई है— "क्या लेखक से विशेष प्रकार के साहित्य की माँग करना उचित है?" इस परिचर्चा में सम्मिलित हैं— के. सच्चिदानन्दन, अशोक वाजपेयी और भीष्म साहनी। के. सच्चिदानन्दन मानते हैं— "एक व्यवस्था के रूप में साहित्य में अभिव्यक्ति और व्याख्या की समस्त संभावनाएँ शामिल हैं। इसे किसी एक विशेष संभावना तक सीमित करने से यह दरिद्र ही होगा। लोकतंत्र की आत्मा तो इन्हीं बहुलताओं और खुली संभावनाओं में निवास करती है। यही वजह है कि फासिस्ट हमेशा ही लेखन के एक ही प्रकार, किसी एक ही व्याख्या पर जोर देता है जिससे विचार-विमर्श और संवाद का रास्ता ही बन्द हो जाता है। लेकिन रचनात्मक कृतियाँ हमेशा ही अपनी जटिलता, अनेकार्थकता और बहुध्वनिकता के बल पर मताग्रहों पर विजय प्राप्त कर लेती हैं।"[3]

अशोक वाजपेयी का कथन है— "न तो साहित्य कोई तपोवन है और न ही आलोचना। यह कुरुक्षेत्र है जहाँ द्वन्द्व और संघर्ष अवश्यम्भावी है। पर यह संग्राम दूसरे संग्रामों से कुछ अलग किस्म का है। यहाँ ऐसे संघर्ष की कोई सार्थकता नहीं जो आत्मसंघर्ष से न निकला हो। वही आलोचक हमें विश्वसनीय लगता है, जिसकी आलोचना को आत्मसंघर्ष की आग के रुप में पढ़ा जा सकता है। विनय और आत्मसंघर्ष के बिना, जैसे कि तैयारी और कुशाग्रता या कल्पनाशीलता के बिना आलोचना सम्भव नहीं। हिन्दी में आज ऐसी आलोचना कम है, यह सही है, लेकिन यह हमारा सौभाग्य है कि थोड़ी सही, विवेक की यह रंगभूमि हमारे पास है।"[4]

इसी सन्दर्भ में भीष्म साहनी का विचार है— "लेखक से अपेक्षाएँ की जाएँ, यह स्वाभाविक है। जिस भाँति लेखन के क्षेत्र में रुझान बदलते हैं, पठन-पाठन के क्षेत्र में भी रुचियाँ बदलती रहती हैं। आखिर कहानी आन्दोलनों— नई कहानी, अकहानी, सचेतन कहानी आदि के पीछे साहित्यिक अपेक्षाएँ ही तो थीं। पर जहाँ तक लेखक के सृजन का सवाल है, किसी सीमा तक ही इन अपेक्षाओं की उपयोगिता रहती है क्योंकि मूलतः लेखक का संवेदन ही उसे रास्ता सुझाता है। लेखक का सृजनात्मक व्यक्तित्व इन अपेक्षाओं से नहीं बनता, वह उसके अपने संस्कारों, अनुभवों, चिन्तन, पठन-पाठन और उसकी सूझ से बनता है। जिस माहौल में वह जीता है और साँस लेता है, उस माहौल के प्रति वह निश्चय ही उत्तरोत्तर सचेत होता जाता है।"[5]

'कसौटी' ने हिन्दी आलोचना को व्यापकता दी, रचना की वैचारिक पृष्ठभूमि की पड़ताल की और उसकी सम्भावनाओं को उजागर किया। प्रवेशांक में तीन महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुए— मार्क्स की सौन्दर्य चिन्ता (अपूर्वानन्द), नारी और नारीवाद (तरूण कुमार) और सी. मिली के अंग्रेजी लेख का अपूर्वानन्द द्वारा किया गया अनुवाद— 'अंग्रेजी आलोचना : बीसवीं शताब्दी'। इस अंक में राजेन्द्र प्रसाद स्मारक व्याख्यान माला के अन्तर्गत नामवर

सिंह का 'सांस्कृतिक बहुलतावाद का विमर्श' शीर्षक दिया गया व्याख्यान भी छपा है। टिप्पणी के अन्तर्गत विवेक सिंह का आलेख 'कबीर और दलित आलोचना' अत्यन्त गम्भीर, तार्किक और विचारोत्तेजक है। मुख्य रूप से इसमें डॉ. धर्मवीर की स्थापनाओं का खण्डन किया गया है। पुस्तक समीक्षा के अन्तर्गत सम्पादक नवल जी ने शताब्दी के अन्तिम दशक में प्रकाशित पाँच काव्य-कृतियों की सम्यक् समीक्षा की है। ये काव्य-कृतियाँ हैं— 'अपने खेत में' (नागार्जुन, 1997), 'दुनिया रोज़ बनती है' (आलोक धन्वा, 1998), 'नए इलाके में' (अरुण कमल, 1996), 'रात में हारमोनियम' (उदय प्रकाश, 1998) और 'अनन्तिम' (कुमार अम्बुज, 1998)।

'कसौटी' ने आलोचना, पुस्तक समीक्षा और परिचर्चा के अतिरिक्त साहित्य विधाओं में केवल कविताओं को स्थान दिया है। प्रवेशांक में जनकवि नागार्जुन की स्मृति में उनकी डायरी और उनकी दस चुनी हुई कविताएँ दी गई हैं, और नवोदित कवि प्रेम रंजन अनिमेष की दस कविताएँ भी संपादकीय टिप्पणी के साथ इसमें सम्मिलित की गई हैं। नवल जी की यह टिप्पणी आज पूरी तरह से सच सिद्ध हो गई है— "उनकी कविताओं में एक प्यारी प्रगीतात्मकता है जिसका सृजनात्मक पहलू यह है कि वे कविता में वही कहते हैं, जो गद्य में नहीं कहा जा सकता। स्वभावतः उनमें आधुनिक जीवन के अनावश्यक ब्यौरे और सन्दर्भ नहीं आते लेकिन उनकी कविता यह माँग करती है कि उसे पूरे विन्यास में समझा जाए और उनकी प्रत्येक उक्ति को उचित महत्त्व दिया जाए। वैसे वे एक मजेदार कवि भी हैं। अनिमेष की छिटपुट कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं, इसलिए वे नवोदित पीढ़ी के एक कवि के रूप में जाने गए हैं, लेकिन चूँकि उनकी तरफ हमारा ध्यान अभी पूरी तरह से नहीं गया, हम 'कसौटी' की कवि-श्रृंखला का आरम्भ उन्हीं की दस एकदम नई कविताओं से कर रहे हैं, जो सृजनात्मकता से भरपूर हैं, और अपनी ताज़गी में बेमिसाल। हमारा विश्वास है, आगे आने वाले दिनों में वे अपनी पीढ़ी के बहुत ही समर्थ कवि के रूप में उभरेंगे और हिन्दी कविता की समृद्धि में योग देंगे।"[6]

'कसौटी' के कुल पन्द्रह अंक प्रकाशित हुए और प्रत्येक अंक को नवल जी ने अपनी सम्पादन-दक्षता से संग्रहणीय बना दिया। हर अंक के संपादकीय में प्रासंगिक विषयों पर उन्होंने बौद्धिक किन्तु लोकतांत्रिक संवाद दिया। दूसरे अंक (जुलाई-सितंबर, 1999) का संपादकीय अत्यन्त खोजपूर्ण है— "निराला की अन्तिम कविता"। इस अंक में परिचर्चा का विषय है— "क्या साहित्य मानव विरोधी हो सकता है?" इसमें प्रकाशित लेख हैं— उत्तर-आधुनिकतावाद और मार्क्सवाद (रणधीर सिंह), जीवनानन्द दास की कविता (पूर्णेन्दु मुखोपाध्याय) और 'हिन्दी की युवा आलोचना' (नन्दकिशोर नवल)। हिन्दी की युवा आलोचना का विवेचन करते हुए नवल जी कहते हैं— "संक्षेप में, हिन्दी आलोचना का चित्र यह है, जो बहुत संतोषजनक नहीं तो असंतोषजनक भी नहीं है। युवा आलोचक साहित्य के गम्भीर सवालों से उलझ रहे हैं, उसे आलोचना का विषय बना रहे हैं और निर्भीकता के साथ अपनी बातें रख रहे हैं। यदि इस कोशिश में कभी वे कुछ अगम्भीर हो जाते हैं, या कुछ ज्यादा गम्भीर हैं, तो यह चिन्ता की कोई बात नहीं है।"[7] यह विवेचन मूलतः प्रकाशित इन तीन आलोचना ग्रन्थों— 'कविता की संगत' (विजय कुमार), 'विषयान्तर' (मदन सोनी) और 'तीसरा रुख' (पुरुषोत्तम अग्रवाल) के आधार पर हुआ है। मैथिलीशरण गुप्त पर पुनर्विचार करते हुए युवा आलोचक और पत्रिका के सह-सम्पादक अपूर्वानन्द ने लिखा है— "प्रेम गुप्त-काव्य का सर्वोच्च मूल्य है तथा इसकी व्याप्ति भी बहुत दूर तक है। यह कोई अतीन्द्रिय प्रेम नहीं, इसलिए उसका रूप से गहरा सम्बन्ध है।"[8] यह वस्तुतः मौलिक स्थापना है। ऐसी नई स्थापनाएँ पत्रिका को एक नया स्वर और नई पहचान देती हैं। इस अंक में प्रखर नाट्यालोचक देवेन्द्र राज अंकुर का लेख— 'अभिनेता और दर्शक के बदलते समीकरण' का प्रकाशन पत्रिका के व्यापक दृष्टिकोण का परिचायक है। काव्यालोचन और कथा-आलोचन की अपेक्षा नाट्यालोचन का विस्तार हिन्दी में कम हुआ है। इसे सम्मिलित कर सम्पादक ने समकालीन हिन्दी आलोचना को समग्रता देने की पहल की है।

इस अंक में पाँच नवीन उपन्यासों— 'विश्रामपुर का सन्त' (श्रीलाल शुक्ल, 1998), 'दीवार में एक खिड़की

रहती थी' (विनोद कुमार शुक्ल, 1997), 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' (सुरेन्द्र वर्मा, 1998), 'नदी की याद नहीं' (स्वदेश कुमार, 1998) और 'कलि-कथा : वाया बाईपास' (अलका सरावगी, 1998) की गहन समीक्षा पत्रिका के वरीय सह-सम्पादक तरुण कुमार ने की है। अपनी समीक्षा से उन्होंने कथा-लोचन को एक नई भंगिमा और एक नवीन दृष्टि दी है। इस अंक में बांग्ला के प्रख्यात कवि जीवनानन्द दास की दस कविताएँ तथा नवोदित कवि संजय कुन्दन (1969) की दस कविताएँ संपादकीय टिप्पणी के साथ प्रकाशित की गई हैं।

पत्रिका के तीसरे अंक के संपादकीय में 'विद्रोह और निरन्तरता' पर विचार है और डॉ. नगेन्द्र (निधन 27 अक्टूबर 1999) और प्रो. केसरी कुमार (निधन 13 नवम्बर 1999) को श्रद्धांजलि दी। संक्षिप्त श्रद्धांजलियों में इनके कृतित्व का रेखांकन भी है। केसरी कुमार पर वे लिखते हैं— "13 नवम्बर, 1999 को प्रो. केसरी कुमार भी हमारे बीच नहीं रहे। उनका देहान्त एक लम्बी बीमारी के बाद हुआ। वे सफल प्राध्यापक और हिन्दी साहित्य के बहुत अच्छे जानकार थे। उनके पास साहित्य की अत्यधिक परिपक्व समझ थी जिसकी झलक हमें समय-समय पर उनकी वक्तृताओं और लेखन में मिलती रहती थी। उनकी अधिक शक्ति विद्यार्थियों के लिए उपयोगी पुस्तकें लिखने में व्यय हुई, लेकिन उनमें उन्होंने अपने को बिलकुल चुका नहीं दिया। इसका प्रमाण 'साहित्य और समीक्षा' शीर्षक उनकी पुस्तक, 'नकेन (पहला खंड)' की उनके द्वारा लिखी गई 'परम्परा' शीर्षक भूमिका और उनकी कविताएँ हैं। इसके अलावा प्रो. केसरी कुमार उत्कृष्ट संस्मरणकार भी थे। उनके नलिन विलोचन शर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी और राममनोहर लोहिया पर लिखे गए संस्मरण हिन्दी में संस्मरण के नमूने के रूप में हमेशा याद किए जाएँगे।" 'कसौटी' के इस अंक में श्रद्धांजलि स्वरुप उनकी पाँच चुनी हुई नई कविताएँ दे रहे हैं, जो अपनी मार्मिकता में स्मरणीय सिद्ध होंगी।"[9]

केसरी कुमार प्रपद्यवाद के कवि हैं जिन्हें नकेनवादी भी कहा गया है। नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार और नरेश के नामों के पहले वर्ण से नकेनवाद बना। इस धारा की कविताओं में प्रयोग की नवीनता थी। छोटी कविताओं में भी गहरी व्यंजकता इस धारा की कविता की विशेषता थी। यह छोटी कविता द्रष्टव्य है—

"मेरे मित्र परमेश्वर कुँअर
एक बार पवनार गए
विनोबा देखते ही उछल पड़े—
परमेश्वर, परम ईश्वर।
मित्र ने आदतन रोक दिया
बाबा, परमात्मा नहीं है।
बाबा बोले— हाँ, हाँ उसका एक नाम
'नहीं' भी है।"[10]

इस अंक में केदारनाथ सिंह की दो लम्बी कविताएँ, विनोद कुमार शुक्ल की पाँच कविताएँ और कुमार अम्बुज की दस कविताएँ प्रकाशित हैं। कुमार अम्बुज की कविताओं के पूर्व संपादक की टिप्पणी है जो कवि की काव्य-प्रवृत्ति को रेखांकित करती है। इस अंक में जो प्रकाशित लेख हैं— इतिहास, विश्वास और राजनीति (शम्सुर्रहमान फ़ारुक़ी), संतों और धर्मनिरपेक्षतावादियों के बीच (के. सच्चिदानन्दन), अन्यच्छाया का सौन्दर्यशास्त्र या परपुर में प्रवेश (राधावल्लभ त्रिपाठी) और एक नीला आइना बेठोस अर्थात् कवि शमशेर (नन्दकिशोर नवल)। नाटक और रंगमंच स्तम्भ के अन्तर्गत देवेन्द्रराज अंकुर का लेख 'अभिनेता की रचना प्रक्रिया' है जबकि टिप्पणी के अन्तर्गत विवेकी सिंह द्वारा 'उर्वर प्रदेश' काव्य संग्रह पर प्रकाश डाला गया है। 'उर्वर प्रदेश' बीस युवा कवियों का साझा काव्य संग्रह है। ये सारे कवि भारतभूषण अग्रवाल स्मृति पुरस्कार प्राप्त कवि हैं। पुस्तक समीक्षा के अन्तर्गत प्रसिद्ध कथा आलोचक मधुरेश ने इन पाँच उपन्यासों की समीक्षा की है— मायालोक (कृष्ण बलदेव वैद, 1999), दो देश और

तीसरी उदासी (महेन्द्र भल्ला, 1997), पहला गिरमिटिया (गिरिराज किशोर, 1999), काल-कथा (भाग 1 और 2) (कामतानाथ, 1998), चाक (मैत्रेयी पुष्पा, 1997)।

'कसौटी' के छह अंकों में परिचर्चा का प्रकाशन हुआ। चौथे अंक (जनवरी-मार्च, 2000) में आलोचनाः अकादमिक और सृजनात्मक पर इन पाँच विद्वान आलोचकों ने भाग लिया, वे हैं— प्रेमशंकर, निर्मला जैन, परमानन्द श्रीवास्तव, ओमप्रकाश ग्रेवाल और मैनेजर पाण्डेय। पाँचवें अंक की परिचर्चा का विषय है— 'उपन्यास का ढाँचाः देशी और विदेशी'। इसमें भाग लेने वाले आलोचक-रचनाकार हैं— रामचन्द्र तिवारी, मनोहर श्याम जोशी, चन्द्रकान्त वांडिवडेकर, मधुरेश, नन्दकिशोर आचार्य और अलका सरावगी। छठे अंक में परिचर्चा का विषय है— 'समकालीन कहानीः कथादृष्टि का सवाल'। इस परिचर्चा में विश्वनाथ त्रिपाठी, मृदुला गर्ग और अरुण प्रकाश सम्मिलित हुए।

'कसौटी' ने साहित्यिक पत्रकारिता को विशिष्ट स्वरूप दिया। आलोचना केन्द्रित इस पत्रिका ने हिन्दी आलोचना को अधिक वैचारिक और तार्किक बनाया। यह आलोचना साहित्यकारों और साहित्यिक कृतियों तक ही सीमित नहीं रही, इतिहास और संस्कृति सम्बन्धी विचारों को भी इसने महत्त्व दिया। पुस्तक समीक्षा को इसने अधिक पाठोन्मुख बनाया। स्मृति के अन्तर्गत पूर्वज कवियों को प्रकाशित किया। आर्थिक मुद्दों पर भी विमर्श किया और नाट्यालोचन को भी अग्रेसित किया। इसके प्रत्येक अंक में नवल जी का लम्बा संपादकीय रहता था। संपादकीय में वे ज्वलन्त मुद्दों पर विमर्श करते थे। पुस्तक समीक्षा के सम्बन्ध में उनकी यह संपादकीय टिप्पणी कितनी धारदार है— "आलोचना का एक रुप पुस्तक-समीक्षा भी है, जिसका हिंदी में पूरा व्यवसायीकरण हो चुका है, जैसे गीत और गजल का। पुस्तक-समीक्षा प्रायः नए समीक्षक लिखते हैं, वे फ्रीलांसर हों या छोटी-मोटी नौकरी करने वाले। वे दैनिक समाचार पत्रों से लेकर आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ सरकारी, गैर-सरकारी पत्र-पत्रिकाओं तक के दफ्तरों से जुड़कर पुस्तकें बटोरते हैं और उन्हें उलट-पुलटकर एक समीक्षा तैयार कर देते हैं। चूँकि इन समीक्षकों का उद्देश्य अपने किसी छोटे या बड़े स्वार्थ को सिद्ध करना भी होता है, इसलिए इनका सारा जोर समीक्ष्य कृति के कर्ता को प्रसन्न करने पर होता है। स्वभावतः इनकी समीक्षा अपने भीतर गंभीर आलोचनात्मक दृष्टि विकसित करने का माध्यम न होकर चापलूसी जैसी घटिया चीज का साधन होती है। कोफ्त तो यह देखकर होती है कि ऐसी समीक्षा का अनेक बार रचना से कोई सम्बन्ध नहीं होता है, कहना चाहिए वह उसके अर्थ से पूरा 'स्वतंत्र' होती है। उचित ही एक विद्वान का कहना है कि ऐसी समीक्षा का दर्जा अधिक से अधिक साहित्यिक विज्ञापन का होता है। इसके लेखक चूँकि साहित्य के स्वरुप और उसके गम्भीर सिद्धांतों से परिचित नहीं होते या सिरे से उसके प्रति अगम्भीर होते हैं, इसलिए वे प्रशंसा और वाहवाही के साथ भी ठीक से न्याय नहीं कर पाते।"[11]

'कसौटी' के सातवें अंक में माखनलाल चतुर्वेदी के कविकर्म का विवेचन है। आठवें अंक में गीत पर चर्चा है। नौवें अंक में कविता पर विमर्श है। दसवें अंक में प्रेमचन्द की परम्परा पर टिप्पणी है। ग्यारहवें अंक में गजल पर विचार है। बारहवें अंक में मुक्तिबोध के कविकर्म के वैशिष्ट्य का रेखांकन है। तेरहवें अंक में प्रगतिशील लेखक संघ और 'रौशनाई' पर चर्चा है। चौदहवें अंक में नलिन विलोचन शर्मा के कविकर्म का विवेचन है। निस्सन्देह, 'कसौटी' के सम्पादकीय लेखों में आलोचना की शक्ति और उपलब्धियाँ परिलक्षित होती हैं। पत्रिका का अन्तिम अंक पन्द्रहवें अंक के रूप में निकला जो बीसवीं शताब्दी की कालजयी कृतियों पर केन्द्रित था। यह अंक वस्तुतः बीसवीं शताब्दी का साहित्यिक इतिहास ही है।

'कसौटी' पत्रिका भले ही दीर्घजीवी नहीं रही हो किन्तु इसने हिन्दी की आलोचना केन्द्रित साहित्यिक पत्रकारिता में स्वयं को एक जाज्वल्यमान नक्षत्र के रुप में स्थापित किया। इसने आलोचना की कसौटी व्यापक की। परम्परा और प्रयोग, अतीत और वर्तमान के साथ इसने भविष्य की सम्भावनाओं को भी उजागर किया। सीमित संसाधन के बावजूद इस पत्रिका ने यह सिद्ध कर दिया कि संकल्प, साधना और प्रतिभा से असम्भव को भी सम्भव किया जा

सकता है। अनेक नये कवि और आलोचक इसी के माध्यम से साहित्य जगत में प्रविष्ट हुए अथवा प्रसिद्धि पायी। स्थापित आलोचकों की तन्द्रा भंग करने और उन्हें सामयिक साहित्य पर नये ढंग से सोचने की प्रेरणा भी इस पत्रिका ने दी।

सन्दर्भ :

1. सम्पादकीय, 'कसौटी', प्रवेशांक, अप्रैल-जून, 1999, पृष्ठ-3.
2. वही.
3. "साहित्य जड़ सिद्धान्त को अतिक्रान्त करता है", 'कसौटी', प्रवेशांक, पृष्ठ-9.
4. बहुलता, दृष्टि और रुचि, वही, पृष्ठ-12.
5. रचना: लेखक के सर्जनात्मक व्यक्तित्व की देन, वही, पृष्ठ-13.
6. बचे हुए आदमी का संस्मरण (सम्पादकीय टिप्पणी), वही, पृष्ठ-29.
7. 'कसौटी', अंक-2, जुलाई-सितम्बर, 1999, पृष्ठ-87.
8. वही, पृष्ठ-103.
9. 'कसौटी', अंक-3, अक्टूबर-दिसम्बर, 1999, पृष्ठ-7.
10. 'नहीं भी है' (कविता), 'कसौटी', वही, पृष्ठ-31.
11. आलोचना का वर्तमान परिदृश्य (सम्पादकीय), 'कसौटी', अंक-6, पृष्ठ-7.

•